International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 190-193

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 190-193
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-09-2016
Accepted: 20-10-2016

आशीष कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग राजधानी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) राजा गार्डन, नई दिल्ली -110015

Correspondence
आशीष कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग राजधानी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) राजा गार्डन, नई दिल्ली-110015

मेघदूत के मेघ का मानवीय स्वरूप

आशीष कुमार

संस्कृत साहित्य के गीति-काव्यों में मेघदूत का स्थान सर्वप्रथम है। यह कालिदास की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची उड़ान तथा उत्कृष्ट भाषा शैली का परिचायक ग्रन्थ है। यह मन्दाक्रान्ता छन्द में लिखा हुआ 125 पद्यों का एक छोटा सा गीतिकाव्य है, जो दो भागों में विभक्त है - पूर्वमेघ और उत्तरमेघ।

इसके अन्तर्गत अपनी प्रेमिका के प्रति अन्धा-प्रेम करने वाला एक यक्ष अपने कर्त्तव्य में आलस्य कर बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप उसे यक्षेश्वर कुबेर के द्वारा शाप दे दिया जाता है। इसी शाप की पूर्ति हेतु उसे अलकापुरी से निकलकर एक वर्ष के लिए पृथ्वीलोक पर अपना डेरा डालना पड़ता है। वह विन्ध्यांचल में रामगिरि पर बने आश्रमों में रहना प्रारम्भ कर देता है। अपनी प्रियतमा से दूर हुआ वह किसी प्रकार शाप की अवस्था से आठ मास तो जैसे-तैसे बिता लेता है, परन्तु एक दिन उसे आषाढ़ मास के आरम्भ में पहाड़ की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई देता है, उसी क्षण उसका हृदय भर आता है।

कालिदास के अनुसार मेघ के दिखने पर तो सुखी मनुष्य का भी चित्त विचलित हो जाता है, फिर गले मिलने की अभिलाषा वाले व्यक्ति के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या[1]? मेघदूत का यक्ष भी अपनी प्रियतमा से गले मिलने के लिए अत्यन्त व्याकुल है, साथ ही वह काम का मारा हुआ है। कालिदास के अनुसार काम से पीड़ित हुआ व्यक्ति जड़-चेतन पदार्थों के प्रति स्वभाव से दीन अर्थात् विवेकशून्य हो जाया करता है[2]।

यही कारण है कि कालिदास का यक्ष भी काम से पीड़ित हुआ सजीव और निर्जीव में भेद कर पाने में अक्षम है। वह अपनी प्रेमिका के वियोग में तड़पता हुआ, जब आषाढ़ मास के प्रथम मेघ को देखता है तो उसी में मानवीय स्वरूप देखता हुआ अपने हृदय की बात उसे कह देता है। यद्यपि कालिदास ने मेघ का निर्माण चार तत्त्वों - धुआँ, ज्योति (अग्नि), जल तथा वायु से मिलकर बनाया है[3], जो कि कालिदास के भौतिक विज्ञान और रासायनिक विज्ञान से परिचय की बतलाता है। परन्तु मेघदूत के यक्ष के लिए तो वह मेघ उसका मित्र है, जो अब उसके सन्देश को उसकी भार्या तक पहुँचायेगा।

मेघदूत के अनुसार वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में पवन से प्रेरित हुआ मेघ आकाश में उड़ने लगता है। पपीहा मधुर स्वर में गान करता है। आकाश में वलाकायें पंक्तिबद्ध हो उड़ती हैं, क्योंकि ये उनके गर्भाधान का समय है[4]। यक्ष का सन्देशवाहक मेघ भी आकाश मार्ग से उड़ता हुआ अलकापुरी की ओर अग्रसर है। मेघ के अनुकूल हुआ वायु उसे धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहा है। वर्षा के आगमन से परिचित हुआ चातक पक्षी बोलने लगता है, साथ ही आकाश मार्ग से पंक्तिबद्ध होकर जाते हुए बगुलियों के आगे-पीछे राजहंस भी अपने मुख में पाथेय के रूप में कमल-नाल के अग्रभाग के टुकड़ों को दबाये हुए मानसरोवर को प्रस्थान कर रहे हैं। इस प्रकार वे यक्ष के सन्देशवाहक मेघ के साथी बनकर हिमालय की ओर जा रहे हैं। अलकापुरी और मानसरोवर की स्थिति हिमालय पर्वत पर ही बताई गई है, इसलिए दोनों मार्ग के सहयात्री बन गये हैं[5]।

मेघदूत के अन्तर्गत वर्षा काल के प्रारम्भ में हरे और धूसर रंगवाले जिनमें अभी आधे ही केसर निकल पाये हैं, ऐसे कदम्ब के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। एक तरफ हरे कदली वृक्ष खड़े हुए हैं, जिनमें अभी प्रथम बार

ही कलियाँ निकली हैं। प्रथम वर्षा के जल को प्राप्त करने से उच्छवसित भूमि सुगन्ध छोड़ रही है। फूलों पर भौरे गुञ्जायमान हैं। जंगल में हिरण चौकड़ी भर रहे हैं, तथा हाथी दलदल में प्रकट हुई पहली-पहली कलियों वाली कन्दलियों (भुंइकेलियों) को खाकर प्रसन्न हो रहे हैं[6]। हाथी सुगन्धप्रिय होते हैं। बारिश की बूँदें पड़ने से संतप्त पृथ्वी से जो वाष्प निकलती है, वह सुगन्धित होती है। यह वाष्प वायु से मिलने पर वायु को भी सुगन्धित कर देती है। इसी सुगन्धित वायु का हाथी अपनी सूंड़ से पान करते हैं, जिससे उनके नाक के छिद्रों से एक ध्वनि निकलती है। वर्षाकालीन यह शीतल वायु जंगली गूलरों को पकाने वाला होता है। यक्ष के अनुसार ऐसा यह शीतल वायु देवगिरि को जाना चाहते हुए तेरे अर्थात् मेघ के नीचे से बहेगा[7]। जिससे मेघ को अपने मार्ग में शीतलता का आभास होगा और मार्ग की थकावट से भी मुक्ति मिलती रहेगी।

यक्ष मेघ से कहता है कि हे मित्र! मैं जानता हूँ कि मेरी प्रिया के अथवा मेरे प्रिय कार्य के निमित्त तुम शीघ्रातिशीघ्र जाना चाहते हो। परन्तु तुम्हें कुटज के फूलों से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर आनन्द के कारण कुछ देर तो लग ही जायगी तथा डबडबाते नेत्रों वाले मयूरों की टें टें की ध्वनि को तुम अपना स्वागत शब्द जानकर अभिनन्दित हुए तुम कैसे भी करके जल्दी आने का प्रयास करना[8]। यहाँ यक्ष जानता है कि वह मेघ उसी के कार्य के लिए जा रहा है, तथा यक्ष यह भी चाहता है कि वह सन्देश शीघ्रता से उसकी प्रिया के पास पहुँचे, इसीलिए वह बड़े ही सधे हुए शब्दों में मेघ को आतुर होकर नहीं अपितु विनम्रतापूर्वक जल्दी करने को कहता है। जैसे कोई मनुष्य अपने काम के लिए दूसरे मनुष्य को कहता हैं।

मेघ के माध्यम से अपना सन्देश पहुँचाने का इरच्छुक यक्ष मेघ के आनन्द का भी ध्यान रख रहा है। यक्ष मेघ से कहता है कि दशार्ण की राजधानी विदिशा पहुँचकरप तुमको वहाँ कामुकता का अर्थात् नायिका की उपभोग कामना का सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा, क्योंकि तुम वहाँ स्वादिष्ट और तरंगित वेत्रवती नदी के जल को उसी भाँति पान करोगे जैसे कि कोई कामुक नायिका के भ्रूविलास युक्त मुख अर्थात् अधर का पान करता है और तुम्हारा इस प्रकार से पान करना तटप्रदेश पर गर्जन करने से सुन्दर लगेगा[9]।

यक्ष अपने मित्र और सन्देशवाहक मेघ के आराम की भी चिन्ता करता है। यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम विदिशा के समीप विश्राम के लिए 'नीचै:' नामक पर्वत पर ठहर जाना, यह पर्वत उस समय तुम्हारे सम्पर्क को प्राप्त कर अपने पूर्ण विकसित कदम्ब वृक्षों से पुलकित जैसा प्रतीत होगा[10]।

यक्ष पुन: मेघ के आनन्द को ध्यान में रखते हुए कहता है कि हे मेघ! यद्यपि उत्तर दिशा को जाते हुए तुम्हारा मार्ग थोड़ा टेढ़ा पड़ेगा तथापि तुम उज्जयिनी के प्रासादों (महलों) की अट्टालिकाओं के परिचय से पराङ्मुख मत होना, अर्थात् तुम उन्हें अवश्य देखना और यदि तुम वहाँ की सुन्दी स्त्रियों के बिजली की चमक से चौंधियाये या चकाचौंध हुए चञ्चल कटाक्षपातों वाले नेत्रों से आनन्द प्राप्त नहीं करते तो अपने को वञ्चित ही समझना[11]।।

मेघदूत का यक्ष अपने सन्देशवाहक मेघ को केवल अपनी कार्यपूर्ति हेतु प्रयोग में न लाकर उसके हित और आनन्द का भी बार-बार ध्यान रख रहा है, जैसे कि वह उसका कोई अपना ही बन्धु है। यक्ष मेघ को पुन: कहता है कि जब तुम निर्विन्ध्या नदी के पास पहुँचोगे तो तुम्हें वहाँ उससे मिलकर नायिकोपभोग जैसा रतिसुख प्राप्त होगा, क्योंकि उस समया निर्विन्ध्या नायिका तरंग विक्षोभ के कारण शब्दायमान पक्षि पंक्ति रूप करधनी की लड़ी को धारण किये होगी और स्खलित प्रवाह के कारण सुन्दरतापूर्वक उसी प्रकार वह रही होगी जैसे मदवश को कामिनी मस्त चाल से झूमती हुई धीरे-धीरे चलती है। नदी में उठने वाले भँवर ही उस समय निर्विन्ध्या नायिका का रतिकामनावश अपना नाभि प्रदर्शन होगा, ऐसी निर्विन्ध्या नदी के जल प्रवाह में पड़कर तुम आगे के लिये जल भर लेना, जैसे कोई नायक, रतिकामनावश मस्त चाल से चलने वाली एवं अपने नाभि आदि सुन्दर अंगों का प्रदर्शन करने वाली नायिका से बड़े चाव से मिलकर रतिसुख को प्राप्त करता है, और इस सुखानुभूति के समय तुम यह न सोचना कि नायिका द्वारा बिना मुख से प्रणय निवेदन किये, यह आनन्द प्राप्ति कैसे होगी? क्योंकि कामिनियों का अपने प्रियतम के प्रति हाव भावों का प्रदर्शन ही उनका प्रथम रति प्रार्थना वाक्य होता है[12]।

यक्ष अपने मित्र मेघ को काम के साथ-साथ धर्म की भी प्राप्ति करवाना चाहता है। इसीलिए वह मेघ से कहता है कि जब तुम विशाला नगरी पहुँचोगे तब तुम वहाँ के त्रिभुवनाधिपति पार्वतीश्वर महाकालेश्वर के पवित्र मन्दिर में जाना जहाँ कि शिव सेवक गण तुमको अपने स्वामी शिव की कण्ठच्छवि के समान स्यामवर्ण देखकर तुम्हारा सम्मान करेंगे[13]। यक्ष मेघ से कहता है कि कदाचित् तुम सन्ध्याकाल से अतिरिक्त अन्य किसी समय महाकाल मन्दिर में पहुँचो तो तुम वहाँ तब तक ठहरे रहना जब तक कि सूर्यास्त न हो जाये। इस प्रकार शिवजी की सन्ध्याकालीन पूजा में तुम नगाड़े की ध्वनि क्रिया को करके अपने गम्भीर गर्जनों का सम्पूर्ण फल पा जाओगे। अर्थात् तुम सन्ध्याकालीन आरती के समय नगाड़े की ध्वनि का काम करोगे तो तुम्हें अपने गम्भीर गर्जनों का पूर्ण फल रूप धर्म की प्राप्ति होगी[14]। यहाँ यक्ष अपने सन्देशवाहक मेघ के विश्राम का भी ध्यान रखते हुये कहता है कि हे मेघ! देर तक चमकने और विलास करने के कारण अब तक तुम्हारी बिजली रूपी पत्नी थक गई होगी इसलिए उस नगरी में किसी शून्य जन संचार रहित अट्टालिका पर विश्राम कर लेना और सूर्य निकलने पर पुन: अपने शेष मार्ग को पूरा करने को चल देना, क्योंकि जो सज्जन अपने मित्रों के कार्य को पूरा करने के लिए स्वीकार कर लेते हैं वे कभी सुस्त नहीं होते। तुम मेरे मित्र हो अत: मुझे विश्वास है कि तुम मेरे कार्य को अवश्य पूरा करोगे[15]। यहाँ यक्ष को यह भय भी सता रहा है कि कहीं मेघ उसके कार्य को बीच में ही न छोड़ दे, इसीलिए वह उसको बीच-बीच में प्रेरित कर रहा है, तथा मेघ के आमोद-प्रमोद का भी पूर्ण ध्यान रख रहा है। साथ ही यक्ष मेघ को यह आभास करा रहा है कि मेघ कोई सामान्य नहीं अपितु उत्तम प्राणी है, इसीलिए यक्ष मेघ को कहता है कि यदि तुम्हारे जाते समय हिमालय के वन में तेज वायु के चलने से चीड़ वृक्षों की रगड़ से आग लग गयी हो तो तुम अपनी तेज वर्षा से उसे बुझा देना क्योंकि ऐसा करना उत्तमजनों का कर्तव्य है[16]।

यक्ष पुन: मेघ का कल्याण करने की इच्छा से उसे शिव-स्तुति के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है कि हिमालय की शिला पर शिवजीप के चरण चिह्न विद्यमान हैं। योगी सदा इनकी पूजा करते हैं, अत: तुम भी भक्ति-भावना से उनकी प्रदक्षिणा करना, उनके दर्शन करने से

निष्पाप श्रद्धालु जन मरने के बाद शिवजी के गणों के पद को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं[17]। यहाँ यक्ष मेघ के कल्याण के माध्यम से वास्तव में स्वयं का कल्याण चाह रहा है, इसीलिए वह बार-बार शिव-वन्दना और धार्मिक क्रियाओं करने को कह रहा है। उसे लग रहा है कि इससे उसका भी कल्याण होगा और उसे भी ईश्वरस्तुति के फलस्वरूप अभीष्ट की प्राप्ति होगी।

यक्ष मेघ से कहता है कि मार्ग में कैलास पर्वत पर देवाङ्गनायें तुम्हें अपने स्नानागारों के लिये कृत्रिम जलधारा गृह (फव्वारा) बना लेंगी और तुमको वहाँ देर तक रोके रहेंगी। इसलिए यदि तुम्हें उनसे आसानी से छुटकारा न मिले तो तुम उन्हें अपने श्रुति कठोर गर्जनों से भयभीत कर देना और इस प्रकार उनसे छूटकर आगे बढ़ना[18]। वास्तव में यक्ष यह नहीं चाहता है कि उसके कार्य में किसी भी अनावश्यक प्रकार की देरी हो, इसलिये वह मेघ को बीच-बीच में अपने कर्त्तव्य का बोध कराकर सचेत कर देता है।

यक्ष मेघ को उसकी सज्जनानुकूल प्रवृत्ति को पुनः स्मरण कराते हुए अंत में मेघ से प्रश्न करता है कि हे भद्रजन! क्या तुमने इस मेरे मित्र द्वारा करणीय कार्य को करने का निश्चय कर लिया है? पर अचेतन मेघ से कुछ उत्तर न मिलने पर भी वह स्वयं कहता है कि इस विषय में आपके स्वीकृति में उत्तर न देने से मैं यह कदापि नहीं समझता कि आप मेरे इस कार्य को नहीं करेंगे। अपितु इससे यह दृढ़ निश्चय होता है कि आप मेरा कार्य अवश्य ही करेंगे। क्योंकि आप तो उन सत्पुरुषों में हैं जो कि चातकों द्वारा प्रार्थित होकर बिना ही कुछ कहे अर्थात् बिना ही स्वीकृति में उत्तर दिये उनको जल देते हैं। यह सत्य ही कहा जाता है कि सज्जनों का परकार्य सम्पादन ही उनका उत्तर होता है अर्थात् सज्जन स्वीकृति में अपने प्रार्थियों को उत्तर नहीं देते अपितु उनका कार्य पूरा कर देते हैं। कार्य सम्पादन ही उनका उत्तर होता है[19]।

मेघदूत में अनेक स्थलों पर प्रकृति का संवेदनशील रूप देखने को मिलता है। जहाँ जड़ कही जाने वाली प्रकृति भी मानव के सुख में सुखी और दुःखी में दुःखी देखी जा सकती है। वह मानव के समान ही व्यापार करती भी देखी जाती है। मेघ भी प्रकृति का एक अंग ही है। जिसे देखकर विरही यक्ष उसे अपना सन्देशवाहक बनाना चाहता है। यद्यपि यक्ष जानता है कि मेघ अचेतन प्रकृति का एक अंग ही है, तथापि वह यह भी अच्छी प्रकार से जानता है कि प्रकृति में मानव जैसी संवेदनशीलता है, वह मनुष्य के सुख-दुःख की संगिनी है, इसलिए उसे यह विश्वास है कि वह अवश्य उसके साथ सहानुभूति रखकर उसका सन्देश पहुँचा देगा, उसकी संवेदनशीलता से आश्वस्त होकर ही यक्ष सर्वप्रथम, कुटज पुष्पों से उसकी पूजा करता है और फिर उसे अलकापुरी का मार्ग बदलाकर अपना सन्देश भी सुनाता है[20]। यद्यपि मेघ उसके कथन का कोई भी उत्तर नहीं देता, फिर भी यक्ष उसे एक संवेदनशील भावनामय प्राणी ही मानता है और उसके साथ एक मानव जैसा व्यवहार करता है।

सन्दर्भ

1. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
   कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।। (श्लोक संख्या-3, पृ. 7, पूर्वमेघ, मेघदूत, सम्पादक - डॉ. संसारचन्द्र एवं पं. मोहवदेवपन्त शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006)
2. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। (श्लोक संख्या-5, पृ. 10, पूर्वमेघ)
3. धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः (श्लोक संख्या-5, पृ. 10, पूर्वमेघ)
4. मन्दं मन्दं नदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
   वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्वः।
   गर्भाधानकण परिचयान्नूनमाबद्धमालाः
   सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।। (श्लोकसंख्या 10, पृ. 19, पूर्वमेघ)
5. कर्तु यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
   तच् छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
   आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
   सम्पत्स्यन्ते नभसि भवति राजहंसाः सहायाः।। (श्लोक संख्या-11, पृ. 21, पूर्वमेघ)
6. नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
   राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम।
   जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाध्राय चोर्व्याः
   सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।। (श्लोक संख्या-21, पृ. 40, पूर्वमेघ)
7. त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
   स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः
   नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूं गिरिं ते
   शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।। (श्लोक संख्या-44, पृ. 88, पूर्वमेघ)
8. उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
   कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
   शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
   प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्।। (श्लोक संख्या-22, पृ. 43, पूर्वमेघ)
9. तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
   गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
   तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-
   त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।। (श्लोक संख्या-24, पृ. 47, पूर्वमेघ)
10. नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रान्ति-हेतो-
    स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
    यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
    मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौ वनानि।। (श्लोक संख्या-25, पृ. 50, पूर्वमेघ)
11. वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
    सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
    विद्युद्दामस्फुरण चकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
    लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि।। (श्लोक संख्या-27, पृ. 54, पूर्वमेघ)
12. वीचिक्षोभस्तनित विहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
    संसर्पन्त्या स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
    निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।। (श्लोक संख्या-28, पृ. 56, पूर्वमेघ)

13. भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य। (श्लोक संख्या-35, पृ. 69-70, पूर्वमेघ)
14. अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्सन्ध्या-बलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्ये गर्जितानाम्।। (श्लोक संख्या-36, पृ. 71, पूर्वमेघ)
15. तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।। (श्लोक संख्या-40, पृ. 80, पूर्वमेघ)
16. तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम्।। (श्लोक संख्या-55, पृ. 114, पूर्वमेघ)
17. तत्र वैव्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचिबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वं मुद्धूतपापाः
कल्पन्तेऽस्य स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।। (श्लोक संख्या-57, पृ. 119, पूर्वमेघ)
18. तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तब यदि सखेधर्मलब्धस्य न स्या-
त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः।। (श्लोक संख्या-63, पृ. 134, पूर्वमेघ)
19. कच्चित्सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।। (श्लोक संख्या-54, पृ. 277, उत्तरमेघ)
20. स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।। (श्लोक संख्या-4, पृ. 8, पूर्वमेघ)